आर्ष ग्रन्थों में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि और उसका अर्थ अभिप्राय

—डा. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

वैदिक, बौद्ध और जैन मान्यताओं पर आधारित संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति का संगठन करती हैं। भारतीय संस्कृति को जानने के लिए इन संस्कृतियों का जानना परम आवश्यक है। इन संस्कृतियों को जानने के लिए मुख्यतया दो स्रोत प्रचलित हैं[1]—

(अ) व्यावहारिक पक्ष (ब) सिद्धान्त पक्ष

काल और क्षेत्र के अनुसार व्यावहारिक पक्ष में प्रचुर परिवर्तन होते रहे किन्तु वाङ्मय में प्रयुक्त शब्दावलि में किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं हो सका। इस प्रकार के साहित्य को समझने-समझाने के लिए उसमें व्यवहृत शब्दावलि को बड़ी सावधानी से समझना चाहिए। जैन संस्कृति से सम्बन्धित अनेक पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जिनके अर्थ वैदिक और बौद्ध संस्कृतियों की अपेक्षा भिन्न हैं। शब्द का सम्यक् विश्लेषण कर हमें उसमें व्याप्त अर्थात्मा को भली-भाँति जानना और पहचानना चाहिए। ऐसी जानकारी प्राप्त करने के लिए शब्द-साधक को किसी भी पूर्व आग्रह का प्रश्रय नहीं लेना होगा। वह तटस्थभाव से तत्सम्बन्धी सांस्कृतिक शब्दावलि को जानने का प्रयास करता है।[2]

महात्मा भर्तृहरि का कथन है कि यथा—

सा सर्व विद्या शिल्पानां कलानां चोपबन्धिनी।
तद् शब्दाभिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते।

अर्थात् समस्त विद्या, शिल्प और कला शब्द की शक्ति से सम्बद्ध है। शब्द शक्ति से पूर्ण या सिद्ध समस्त वस्तुएँ विवेचित और विभक्त की जाती हैं। अभिव्यक्ति एक शक्ति है।[3] अभिव्यक्ति के प्रमुख उपकरणों में भाषा का स्थान महनीय है। अभिव्यक्ति और अर्थ-व्यंजना में शब्द शक्ति की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। शब्द के रूप और अर्थ में काल और क्षेत्र का प्रभाव पड़ा करता है। कालान्तर में उसके स्वरूप और अर्थ में परिवर्तन हुआ करते हैं। परिवर्तन की इस धारा में प्राचीन वाङ्मय में प्रयुक्त शब्दावलि का अपना अर्थ-अभिप्राय विशेष रूप ग्रहण कर लेता है। शब्द का यही विशेष अभिप्राय अथवा अर्थ वस्तुतः उसका पारिभाषिक अर्थ स्थिर करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द क्या है ? यह जानना भी आवश्यक है । श्री कालिका प्रसाद शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि आकाश में किसी भी प्रकार से उत्पन्न क्षोभ जो वायु तरंग द्वारा कानों तक जाकर सुनाई पड़े अथवा पड़ सके वह शब्द कहलाता है ।[5] शब्द मूलतः एक शक्ति है । वह ब्रह्म है । परमात्मा है । संसार के सभी रसों का परिपाक शब्दों में समाहित है । उसकी महिमा अपार है । शब्द की साधना से सर्वस्व सध जाता है । साहित्यशास्त्र में शब्द महिमा का अतिशय उल्लेख मिलता है । शब्द मूलतः एक ध्वनि विशेष है । ध्वनि सामान्यतः दो प्रकार की होती है । यथा—

(अ) निरर्थक (ब) सार्थक

वाद्य यन्त्र (मृदंगादि) से उत्पन्न ध्वनि निरर्थक है और मनुष्य के वाग्यन्त्र से निसृत सार्थक ध्वनि वर्णात्मक ध्वनि कहलाती है । यही वस्तुतः व्याकरण में वह ध्वनि समष्टि है जो एकाकी रूप में अपना अर्थ रखती है । जब शब्द वाक्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होकर विभक्त्यन्त रूप धारण करता है तो वह वस्तुतः पद कहलाता है ।[6] बालक एक शब्द है और जब वह वाक्य के अन्तर्गत 'बालकः पठति' के रूप में प्रयुक्त होता है तो 'बालकः' पद बन जाता है क्योंकि यह प्रथमा विभक्ति का एक वचन है और व्याकरण के अनुसार सुप् विभक्ति प्रत्यय है । 'पठति' दूसरा पद है क्योंकि इसमें तिङ् प्रत्यय है । आचार्य पाणिनि शब्द में विभक्ति के प्रयोग से पद का निर्माण होना मानते हैं ।[7]

भाषाविज्ञान की दृष्टि से शब्द की मान्यता में कालान्तर में परिवर्तन हुआ करता है । शब्द बड़ा स्थूल है और उसमें व्यञ्जित अर्थ उतना ही सूक्ष्म । यद्यपि सूक्ष्म की अभिव्यक्ति स्थूल के माध्यम से सम्भव नहीं होती तथापि जो प्रयत्न हुए हैं उन्हें सावधानीपूर्वक समझने की सर्वथा अपेक्षा रही है । किसी विशिष्ट शास्त्र में जो शब्द किसी विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थ की दृष्टि ने उस शब्द को पारिभाषिक शब्द कहते हैं । डॉक्टर रघुवीर के अनुसार जिन शब्दों की सीमा बाँध दी जाती है, वे पारिभाषिक शब्द हो जाते हैं और जिनकी सीमा नहीं बाँधी जाती वे साधारण शब्द होते हैं ।[8] श्री महेन्द्र चतुर्वेदी पारिभाषिक शब्द के दो प्रमुख गुणों का उल्लेख करते हैं ।[9] यथा—

(अ) नियतार्थता (ब) परस्पर अपवर्जिता

प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का अर्थ नियत निश्चित होता है जिसमें सुनिश्चित अर्थ को ही व्यक्त किया जाता है । सामान्य शब्द का उद्भव जन-साधारण के बीच होता है और वहाँ स्वीकृत होने के बाद वह अपर बौद्धिकता के स्तर तक उठता है परन्तु पारिभाषिक शब्द का जन्म एक सीमित संकुचित बौद्धिक कर्म की सहमति से और उनके बीच होता है ।

भाषा में पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता सतत बढ़ती रहती है । ज्यों-ज्यों ज्ञान-विज्ञान के चरण आगे बढ़ते हैं उनकी उपलब्धियों को मूर्त्त बोधगम्य रूप देने के लिए पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता पड़ती है । हमारे ज्ञान की वर्द्धमान परिधि में जो भी वस्तु विचार अथवा व्यापार आ जाते हैं उन्हें हम नाम दे देते हैं । यह प्रक्रिया सामान्य शब्दों के जन्म की प्रक्रिया से भिन्न होती है । पारिभाषिक शब्दावलि बौद्धिक तन्त्र की उपज है और जहाँ तक इस तन्त्र की सीमा होती है वहीं तक उसका प्रचार-प्रसार होता है । किसी भी भाषा में समुचित पारिभाषिक शब्दावलि की विद्यमानता उस भाषा-भाषी वर्ग के बौद्धिक उत्कर्ष एवं सम्पन्नता का परिचायक होती है और उसका अभाव बौद्धिक दरिद्रता का । भाषाओं की शब्दावलियों में पारिभाषिक शब्दावली का महान् स्थान मिस्टर मोरियोपाई के इस कथन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से स्पष्ट भाषित हो जाएगा[10]—"यह अनुमान लगाया गया है कि सभी सभ्य भाषाओं की शब्दावलियों में आधे शब्द वैज्ञानिक तथा शिल्प विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द हैं, जिनमें से बहुत से शब्द पूरी तरह से अन्तर्राष्ट्रीय हैं।"

भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा शिक्षाशास्त्री स्वर्गीय डॉ० शान्ति स्वरूप भटनागर ने लिखा था[11]—"समस्त भारत के शिक्षाशास्त्री इस बात में सहमत हैं कि देश में आधुनिक विज्ञानों के ज्ञान के प्रचार में सबसे बड़ी बाधा समुचित पारिभाषिक शब्दावलि का अभाव है।" पारिभाषिक शब्दों, अर्द्ध पारिभाषिक शब्दों तथा सामान्य शब्दों का यह महान अभाव न केवल हिन्दी में ही है, वरन् भारत की सभी आधुनिक भाषाओं में है।[12]

कभी-कभी एक ही पारिभाषिक शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न विषयों या विज्ञानों में भी अलग-अलग हो जाता है। उदाहरण के बतौर, संस्कृत शब्द 'आगम' का साधारण अर्थ 'आना' होता है। पर निरुक्त में इसका अर्थ 'किसी शब्द में किसी वर्ण का आना तथा प्रत्यय' होता है। धर्मशास्त्र में आगम का अर्थ 'धर्मग्रन्थ और परम्परा से चला आने वाला सिद्धान्त' होता है। आप्टे के संस्कृत अंग्रेजी कोश में आगम के इन पाँच अर्थों के अतिरिक्त १३ अर्थ और दिये हैं जिनमें चार-पाँच अर्थ पारिभाषिक हैं। इसी प्रकार सन्धि शब्द का साधारण अर्थ मेल है पर संस्कृत व्याकरण और राजनीति में इसके अलग-अलग अर्थ हैं जो मेल-मिलाप से कुछ मिलते हुए भी भिन्न ही हैं। आप्टे ने सन्धि शब्द के भी चौदह अर्थ दिये हैं। संस्कृत 'लोह' शब्द का सामान्य अर्थ 'लोहा' हम सब जानते हैं पर 'लोह' शब्द के अर्थ भी ताँबा, ताँबे का फौलाद, सोना, लाल, लालसा, कोई धातु, रक्त (खून), हथियार और मछली पकड़ने का काँटा भी है। अभी देखते-देखते बौद्ध धर्म का धार्मिक-पारिभाषिक शब्द 'पंचशील' राजनैतिक-पारिभाषिक शब्द बन गया और उसका अर्थ सह-अस्तित्व आदि हो गया। इसी प्रकार 'समय' शब्द का सामान्य अर्थ काल (Time) का बोधक है। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में 'समय' के उन्नीस अर्थ उल्लिखित हैं।[13] लेकिन जैन दर्शन में उसका अभिप्राय 'आत्मा' से भी है। अतएव 'समय' शब्द जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। 'निरोध' शब्द का जन-सामान्य में अर्थ प्रचलित है—परिवार नियोजन का चर्चित उपकरण। पर जैन दर्शन में इसका अर्थ ज्ञानपूर्वक रोकना है। 'भव' का सर्वसामान्य अर्थ है संसार किन्तु जैन दर्शन में 'भव' शब्द जन्म से मरण तक की मध्यवर्ती अवधि के लिए प्रयुक्त होता है अतएव जैन दर्शन के उक्त दोनों शब्द भी पारिभाषिक हैं।

इस प्रकार पारिभाषिक अर्थ व्यञ्जना को जाने बिना प्राचीन आर्ष ग्रन्थों का अर्थ समझना प्रायः सम्भव नहीं है। पारिभाषिक शब्दावलि से अपरिचित होने के कारण इन ग्रन्थों में व्यञ्जित अर्थात्मा को समझने-समझाने में बड़ी असावधानी की जा रही है। प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावलि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई अर्थशास्त्री (शब्दार्थशास्त्री—**Semasiologist**) किसी भी काव्यांश का अर्थ और व्याख्या करने में समर्थ नहीं हो सकता। प्रस्तुत शोध-लेख में आर्ष ग्रन्थों में व्यवहृत कतिपय पारिभाषिक शब्दों का अर्थ अभिप्राय प्रस्तुत करना हमारा मूलाभिप्रेत है।

अणुव्रत—'अणु' का अर्थ सूक्ष्म है तथा व्रत का अर्थ धारण करना है। इस प्रकार अणुव्रत शब्द की सन्धि करने पर इस शब्द की निष्पत्ति हुई। अणु नामधारी व्रत अणुव्रत है। निश्चयसम्यक्दर्शन सहित चारित्र गुण की आंशिक शुद्धि होने से उत्पन्न आत्मा की शुद्धि विशेष को देशचारित्र कहते हैं। श्रावक दशा में पाँच पापों का स्थूलरूप एकदेश त्याग होता है, उसे अणुव्रत कहा जाता है।[14]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुव्रत पाँच प्रकार से कहे गए हैं[15]—यथा—

(१) अहिंसा, (२) सत्य,
(३) अचौर्य, (४) ब्रह्मचर्य,
(५) अपरिग्रह।

ये पंचाणुव्रत आचार का मूलाधार हैं। अणुव्रत सम्यक्दर्शन के बिना नहीं होते हैं, ऐसा जैनाचार्यों ने कहा है।[16] बौद्ध साहित्य में इनका नाम शील है। योगदर्शन में इन्हें यम कहा गया है। अष्टांग योग इन्हीं पर आधृत है।[17]

अनुयोग—'अनु' उपसर्ग को 'युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर अनुयोग शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ परिच्छेद अथवा प्रकरण है[18] यथा—

अनुयोगोऽधिकारः परिच्छेदः प्रकरणामित्याये कोऽर्थः। जिनवाणी में वर्णित आगम जिसमें सर्वज्ञ प्रणीत सूक्ष्म दूरवर्ती—भूत व भावी काल के पदार्थों का निश्चयात्मक वर्णन किया गया है, ऐसे आगम के चार भेदों को अनुयोग कहते हैं जिनमें क्रमशः चक्रवर्ती का चरित्र निरूपण, जीव कर्मों, त्रिलोक आदि सप्त तत्त्वों, मुनिधर्म आदि का निरूपण किया गया है।[19]

बृहद्द्रव्यसंग्रह में अनुयोग चार प्रकार से कहे गये हैं[20]— यथा—

(१) प्रथमानुयोग, (२) करणानुयोग
(३) चरणानुयोग, (४) द्रव्यानुयोग।

प्रथमानुयोग—इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महान पुरुषों का चरित्र वर्णित है।

करणानुयोग—यहाँ जीव के गुणस्थान, उसके मार्गणादि रूप, कर्मों तथा त्रिलोकादि का निरूपण हुआ है।

चरणानुयोग—इसमें मुनिधर्म तथा गृहस्थधर्म का वर्णन हुआ है।

द्रव्यानुयोग—यहाँ षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, स्व-पर भेदविज्ञानादि का निरूपण हुआ है।[21]

आरम्भ—आङ्+रम्भ के मेल से 'आरम्भ' शब्द निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ है चारों ओर से प्राणियों को रंभाने अर्थात् पीड़ा पहुँचाने वाली प्रवृत्ति यथा—

आरम्भः प्राणि पीड़ा हेतुर्व्यापारः।[22]

'आरम्भ' हिंसा के चार भेद—संकल्पी, आरम्भी, उद्यमी तथा विरोधी—में से एक भेदविशेष है। आरम्भी हिंसा किसी भी गृहस्थ के द्वारा किए गए कार्य सम्पादन में जाने-अनजाने रूप से हुआ करती है[23] यथा—

प्राणिप्राण वियोजनं आरम्भौणाम्।

हिंसनशील अर्थात् हिंसा करना है स्वभाव जिनका वे हिंस्र कहलाते हैं। उनके ही कार्य हैंस्र कहलाते हैं। उनको ही आरम्भ कहते हैं[24]—यथा—

हिंसनशीला, हिंस्राः, तेषां कर्म हैंस्रमुः, आरम्भ इत्युच्यते।

व्रती व्रत-साधना के साधकों को इस प्रकार की हिंसा का भी निषेध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्रव—आङ् + श्रु + अव् प्रत्यय होने पर आश्रव शब्द निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है आकर्षण होना।* कर्म के उदय में भोगों की जो राग सहित प्रवृत्ति होती है वह नवीन कर्मों को खींचती है अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के आने का द्वार ही आस्रव कहलाता है।[25] इस प्रकार कर्म के आकर्षण के हेतुभूत आत्म-परिणाम का नाम आस्रव है। वस्तु के गुण को तत्त्व कहा गया है। जैन दर्शन में सात तत्त्वों—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, तथा मोक्ष की चर्चा की गई है[26]—यथा—

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।

इस प्रकार आस्रव तत्त्व का भेद विशेष है। कार्मण स्कन्ध को आकर्षित करने वाली एक योग नामक शक्ति जीव में होती है जो मन, वच, काय का सहयोग पाकर आत्मा के प्रदेशों में हलचल उत्पन्न करती है। इस योग शक्ति से जो कार्मण स्कन्धों का आकर्षण होता है, उसे आस्रव कहते हैं[27]—यथा—

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥
सः आस्रवः ॥ २ ॥

राजवार्तिक में पुण्य-पाप रूप कर्मों के आगमन के द्वार को आस्रव कहा गया है[28]—यथा—

पुण्यपापागम द्वार लक्षण आस्रवः।

आस्रव को दो भागों में विभाजित किया गया है[29]—यथा—

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणे स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥

१. **द्रव्यास्रव**—ज्ञानावरणादिरूप कर्मों का जो आस्रव होता है, वह द्रव्यास्रव है।

२. **भावास्रव**—जिस परिणाम से आत्मा के कर्म का आस्रव होता है, वह भावास्रव कहलाता है।

द्रव्य

द्रव्यं पदार्थः। द्रव्य का अर्थ पदार्थ है। द्रव्य वह मूल विशुद्ध तत्त्व है जिसमें गुण विद्यमान हो तथा जिसका परिणमन करने का स्वभाव है[30]—यथा—

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णं ते अण्णमूदं तू सत्तादो ॥

गुण, पर्याय, सदा पाए जाएँ, नित्य रूप हो, अनेक रूप परिणति क्रम ही वह द्रव्य है[31]—यथा—

तं परियाणहि दव्वु तुहुँ जं गुण पज्जय-जुत्तु।
सह भुव जाणहि ताहे गुण कम भुव पज्जउ वुत्तु ॥

वस्तुतः गुण और पर्यायों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य दो प्रकार से कहे गए हैं[3]—यथा—

(क) जीवद्रव्य—जीव चेतनशील द्रव्य है।
(ख) अजीवद्रव्य—अजीव चेतनाशून्य द्रव्य है।

---

* आस्रव की उक्त व्युत्पत्ति लेखक की स्वनिर्मित लगती है। वस्तुतः द्रव्यसंग्रह के अनुसार ही 'स्रु' धातु से आस्रव शब्द निष्पन्न है जिसका अर्थ है—बहकर आना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजीव द्रव्य के पाँच भेद किए गए हैं[33]—यथा—

अजीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म-आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादि गुणों अमुत्ति सेसाहु ॥

अर्थात् पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पाँचों को अजीव द्रव्य जानना चाहिए। इनमें पुद्गल मूर्तिमान है क्योंकि रूपादि गुणों का धारक है। शेष अमूर्त हैं। भेद इस प्रकार हैं—

(क) पुद्गल द्रव्य—पुद्गल द्रव्य रूप, रस, गंध तथा स्पर्श सहित होना है। यह मूर्तीक है। शेष चार अमूर्तीक हैं। जिसमें पूरण—एकीभाव और गलन—पृथक्भाव होता है, वह पुद्गल द्रव्य है।

पुद्गल के दो भेद हैं—परमाणु और स्कन्ध। अविभाज्य पुद्गल को परमाणु कहते हैं। जो पौद्गलिक पदार्थों का अन्तिम कारण, सूक्ष्म, नित्य, एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श युक्त होता है और दृश्यमान कार्यों के द्वारा जिसका अस्तित्व जाना जाता है, उसे परमाणु कहते हैं। परमाणुओं के एकीभाव को स्कन्ध कहते हैं। अजघन्य गुण वाले (दो या दो से अधिक गुण वाले) रूखे एवं चिकने परमाणुओं के साथ एकीभाव होता है। दो से लेकर अनन्त तक के परमाणु एकीभूत हो जाते हैं, उनका नाम स्कन्ध है जैसे दो परमाणुओं के मिलने से जो स्कन्ध बनता है, उसे द्विप्रदेशी स्कन्ध कहते हैं। इसी प्रकार तीन प्रदेशी, दश प्रदेशी, संख्येय प्रदेशी, असंख्य प्रदेशी और अनंत प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

(ख) धर्मद्रव्य—यह जीव तथा पुद्गल को चलने में सहायक होता है। गति में सहायक होने वाले द्रव्य को धर्मद्रव्य कहते हैं।

(ग) अधर्मद्रव्य—यह अधर्मद्रव्य जीव तथा पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है। स्थिति में सहायक होने वाले द्रव्य को अधर्म कहते हैं।

(घ) आकाश द्रव्य—छहों द्रव्य का निवास स्थान आकाश द्रव्य है। अवगाह देने वाले द्रव्य को आकाश द्रव्य कहते हैं। अवगाह का अर्थ है अवकाश या आश्रय। आकाश अवगाह लक्षण वाला है। लोकाकाश तथा अलोकाकाश के भेद से आकाश दो प्रकार का है। जो आकाश षड्द्रव्यात्मक होता है उसे लोकाकाश कहते हैं। जहाँ आकाश के अतिरिक्त कोई द्रव्य नहीं होता उस आकाश को अलोक कहते हैं।

(ङ) काल द्रव्य—जो द्रव्यों के परिणमन होने में सहायक है, वह निश्चयकाल है तथा वर्ष, माह आदि व्यवहार काल है।

निर्जरा

निर्गताः जरा-वृद्धत्वं न अपितु कर्माणां जीर्णत्व इति निर्जराः। निर्जरा का अर्थ है जरा रहित। बाँधे हुए कर्मों के प्रदेशों के क्षय होने को निर्जरा कहते हैं।[34] कर्मों की जीर्णता से निवृत्ति का होना निर्जरा कहा गया है[35]—यथा—

पुव्वबद्ध कम्म सड्ढणं तु णिज्जरा

अर्थात् पूर्वबद्ध कर्मों का झड़ना निर्जरा है। आत्म-प्रदेशों के साथ कर्म प्रदेशों का उस आत्म-प्रदेशों से झड़ना निर्जरा है[36]—यथा

बन्धपदेशग्गलणं णिज्जरणं

वस्तुतः तपस्या के द्वारा कर्ममल का विच्छेद होने से जो आत्म-उज्ज्वलता होती है, उसे निर्जरा कहते हैं। निर्जरा दो प्रकार से कही गई है[37]—यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) **सविपाक निर्जरा**— अपने समय पर स्वयं कर्मों का उदय में आकर झड़ते रहना।

(ख) **अविपाक निर्जरा**— तप द्वारा समय से पहले कर्मों का झड़ना।

शुभ भावों से पाप की निर्जरा होती है और पुण्य का बन्ध होता है किन्तु शुद्ध भावों से दोनों की निर्जरा होती है।

लेश्या

लिश्यते इति लेश्याः। कषायां प्रकृतिरेदं लेश्या। लेश्या का अर्थ लेप है[38] – यथा—

लिम्पतीति लेश्या

जो जिसे वह लेश्या है। कषायों से लिप्त मन-वचन-काय की प्रवृत्ति लेश्या कहलाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि शुभ-अशुभ भाव रूप लेप के द्वारा आत्मा के परिणाम लिप्त करने वाली प्रवृत्ति लेश्या कहलाती है[39]—यथा—

लिप्पह अप्पी कीरइ एयाह णियय पुण्ण पावं च।
जीवोति होइ लेसा लेसागुण जाणयक्खाया।।

अर्थात् जिसके द्वारा जीव पुण्य-पाप से अपने को लिप्त करता है, उसको लेश्या कहते हैं। लेश्या दो प्रकार से कही गई है[40] यथा—

(क) **भावलेश्या**—जीव के परिणाम स्वरूप भावलेश्या होती है।

(ख) **द्रव्यलेश्या**—शरीरनामकर्मोदय से उत्पन्न द्रव्यलेश्या है।

द्रव्यलेश्या छह प्रकार से वर्णित है जिन्हें दो मुख्य भागों में निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है[41]—

(क) शुभलेश्या—

(क) पीत लेश्या—सुवर्ण सदृश वर्ण
(ख) पद्म लेश्या—पद्म समान वर्ण
(ग) शुक्ल लेश्या—शंख के सदृश वर्ण

(ख) अशुभलेश्या—

(क) कृष्ण लेश्या—भ्रमर के सदृश काला वर्ण
(ख) नील लेश्या—नीलमणि सदृश रंग
(ग) कापोत लेश्या—कपोत सदृश वर्ण

संवर—सम पूर्वक 'वृ' धातु से अप प्रत्यय करने पर 'संवर' शब्द निष्पन्न हुआ है। जैनदर्शन में सप्त तत्त्वों—जीव, अजीव, बंध, आस्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष—में से पाँचवां तत्त्व संवर है। जीव के रागादिक अशुभ परिणामों के अभाव से कर्म वर्गणाओं के आस्रव का रुकना संवर कहलाता है।[42] आस्रव के निरोध को संवर कहते हैं[43]—यथा—

आस्रव निरोधः संवरः।

गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र्य ये सभी संवर के कारण हैं।[44] संवर दो प्रकार से कहे गए हैं[45]—यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) **भावसंवर**—जो चेतन परिणाम कर्म के आस्रव को रोकने में कारण हैं, उसे निश्चय से भावसंवर कहते हैं।

(ख) **द्रव्यसंवर**—जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण हो, उसे द्रव्यसंवर कहते हैं।

समिति—समयन्ति अस्याम् इति। सम् उपसर्ग इण धातु में क्तन प्रत्यय करने पर 'समिति' शब्द बनता है। लोक में इसका अर्थ 'सभा' है और आध्यात्मिक अर्थ में आत्मा में सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति होना माना गया है[46]—

सम्यगिति समितिरिति।

सर्वार्थसिद्धि में कहा गया है[47]—यथा—

प्राणि पोड़ा परिहारार्थं सम्यगमनं समिति।

इस प्रकार जैन दर्शन में चलने-फिरने, बोलने-चालने और आहार ग्रहण करने में, वस्तु को उठाने-धरने में और मल-मूत्र को निक्षेप करने में सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना अथवा प्राणी पीड़ा के परिहार के लिए सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति है। वस्तुतः चारित्र के अनुकूल होने वाली प्रवृत्ति को समिति कहा जाता है। इस आधार पर समिति के पाँच भेद किए गए हैं[48]—

(१) **ईर्या समिति**—इस समिति के अन्तर्गत क्षुद्र जन्तु रहित मार्ग में भी सावधानी से गमन करना होता है। शरीर प्रमाण (या गाड़ी के जुए जितनी) भूमि को आँखों से देखकर चलना ईर्या समिति है।

(२) **भाषा समिति**—इसमें स्व-परहितकारक वचन बोलना होता है। वस्तुतः निष्पाप भाषा का प्रयोग भाषा समिति है।

(३) **एषणा समिति**—इसमें आहार बिना स्वाद के ग्रहण करना होता है। निर्दोष आहार, पानी आदि वस्तुओं का अन्वेषण करना एषणा समिति है। एषणा के तीन प्रकार हैं—

(क) **गवेषणा**—शुद्ध आहार की जाँच।

(ख) **ग्रहणैषणा**—शुद्ध आहार का विधिवत् ग्रहण।

(ग) **परिभोगैषणा**—शुद्ध आहार का विधिवत् परिभोग।

(४) **आदान निक्षेपण समिति**—ज्ञान के उपकरण, संयम तथा शौच के उपकरण यत्नपूर्वक उठाना-रखना। वस्तु, पात्र आदि को सावधानी से लेना-रखना आदान निक्षेप समिति है।

(५) **प्रतिष्ठापना समिति**—एकान्त स्थान, छिद्र रहित स्थान में मूत्र विष्टा त्याग करना प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं। मल-मूत्र आदि का विधिपूर्वक विसर्जन करना प्रतिष्ठापना समिति है। इसे उत्सर्ग समिति संज्ञा से भी अभिहित करते हैं।[49]

सल्लेखना—सल्लेखनं-सल्लेखना। सम्यक् प्रकारेण निरीक्षणं। 'लिख' धातु में ल्युट प्रत्यय करने पर 'लेखना' शब्द निष्पन्न हुआ। इस शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाने पर 'सल्लेखना' शब्द निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ है भले प्रकार से लेखना अर्थात् कृश करना। जिनवाणी में भली प्रकार से काय तथा कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना कहा गया है।[50] वस्तुतः मारणान्तिक तपस्या का नाम सल्लेखना है। अन्तिम आराधना को स्वीकार करने वाला श्रावक अनशन करने के लिए उससे पूर्व विविध प्रकार की तपस्याओं के द्वारा शरीर को कृश करता है। अनशन के योग्य बनाता है, उस तपस्या-विधि का नाम मारणान्तिकी सल्लेखना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सल्लेखना[51] दो प्रकार की है—

(क) **भाव सल्लेखना**—कषायों को भली प्रकार से कृश करना।

(ख) **द्रव्य सल्लेखना**—भाव सल्लेखना के लिए काय-क्लेशरूप अनुष्ठान करना।

सल्लेखना योगीगत है जब कि आत्म-हत्या भोगीगत।[52] योगी तो अपने प्रत्येक जीवन में शरीर को सेवक बनाकर अन्त समय में सल्लेखना द्वारा उसका त्याग करता हुआ प्रकाश की ओर चला जाता है और भोगी अर्थात् आत्म-हत्यारा अपने प्रत्येक जीवन में उसका दास बनकर अन्धकार की ओर चला जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचो :

1. अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', महावीर प्रकाशन, अलीगंज, एटा, (उ० प्र०), सन् 1977, पृष्ठ 1।
2. जैन हिन्दी पूजा काव्य में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', सप्तसिन्धु, अगस्त 1978, पृष्ठ 29।
3. जैन कवियों के हिन्दी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, डी० लिट्० का शोध प्रबन्ध, सन् 1974, पृष्ठ 3।
4. अपभ्रंश भाषा का पारिभाषिक कोश, डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', जैन शोध अकादमी, सन् 1981, पृष्ठ 2।
5. बृहत् हिन्दी कोश, सम्पादक कालिकाप्रसाद आदि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ 1312।
6. अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', परामर्श (हिन्दी), वर्ष 5, अंक 4, सितम्बर, 1984, पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ 322।
7. सुप्तिङन्तमपदम्। —अष्टाध्यायी, आचार्य पाणिनि, 1,4,14।
8. पारिभाषिक शब्द, डॉ० रघुवीर, संग्रहीत ग्रन्थ—पारिभाषिक शब्दावलि कुछ समस्याएँ सम्पा० डॉ० भोलानाथ तिवारी, प्रथम संस्करण 1973, शब्दकार 2203 गली डकोतान, तुरकमानगेट, दिल्ली-6, पृष्ठ 9।
9. पारिभाषिक शब्दावलि और अनुवाद, श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, संग्रहीत ग्रंथ—पारिभाषिक शब्दावलि कुछ समस्याएँ, पृष्ठ 6।
10. Story of Language, Page 271.
11. Foreword to the Comprehensive English-Hindi Dictionary by Dr. Raghuvira.
12. हिन्दी शब्द रचना, माईदयाल जैन, पृष्ठ 206।
13. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ 8941।
14. (i) बृहद् जैन शब्दार्णव, भाग 2, मास्टर बिहारीलाल, पृष्ठ 629।
    (ii) तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वाति, 7/2।
    (iii) जैन हिन्दी पूजाकाव्य परम्परा और आलोचना, डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', जैनशोध अकादमी अलीगढ़, पृष्ठ 365।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

15. पुरुषार्थ सिद्धोपाय, अमृतचन्द्राचार्य, श्रीमद् रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, आगास, श्लोकांक 40, पृष्ठांक 28।
16. भगवती आराधना, सखारामदोशी, शोलापुर, गाथांक 116, पृष्ठांक 277।
17. जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप, देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृष्ठ 293।
18. बृहद् द्रव्य संग्रह, नेमिचन्द्राचार्य, श्रीमद् रायचन्द्र जैनशास्त्रमाला, आगास, पंक्ति सं० 7, पृष्ठांक 165।
19. मोक्षमार्ग प्रकाशक, आचार्यकल्प पं० टोडरमल, अधिकार संख्या 8, पृष्ठांक 268।
20. (क) बृहद् द्रव्य संग्रह, पृष्ठ 165, पंक्ति संख्या 1 से 6 तक।
(ख) रत्नकरण्ड श्रावकाचार, स्वामी समन्तभद्र, पृष्ठ 135 से 137 तक।
21. जैन हिन्दी पूजाकाव्य परम्परा और आलोचना, डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', पृष्ठ 2 से 3 तक।
22. सर्वार्थसिद्धि, 6/15/333/9।
23. धवला पुस्तक, 13/5,4,22/46/12।
24. राजवार्तिक, भारतीय ज्ञानपीठ, वि० सं० 2008, 6/15/2/525/25।
25. जैन हिन्दी पूजाकाव्य परम्परा और आलोचना, डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', पृष्ठ 369।
26. तत्त्वार्थ सूत्र सार्थ, उमास्वामि, श्री अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, एटा, सन् 1957, पृष्ठांक 3, अध्याय संख्या 1, सूत्रांक 4।
27. तत्त्वार्थसूत्र, पृष्ठांक 76, अध्याय संख्या 6, सूत्रांक 1-2।
28. राजवार्तिक 1/4/9,16/26।
29. बृहद् द्रव्य संग्रह, पृष्ठ 77, श्लोकांक 29।
30. पंचास्तिकाय, 9।
31. परमात्मप्रकाश, आचार्य योगीन्द्रदेव, पृष्ठ 56, दोहांक 57।
32. जैन हिन्दी पूजाकाव्य परम्परा और आलोचना, पृष्ठ 375।
33. बृहद् द्रव्य संग्रह, पृष्ठ 44, श्लोकांक 15।
34. जैन हिन्दी पूजा काव्य परम्परा और आलोचना, पृष्ठ 57।
35. भगवती आराधना, मूल, 1847/1656
36. बारस अणुवेक्खा 66।
37. सर्वार्थसिद्धि, 8/23/399/9।
38. धवला 1/1, 1/4/149/6।
39. पंचसंग्रह प्राकृत, 1/142-143।
40. सर्वार्थसिद्धि 2/6/159/10।
41. गोम्मटसार, जीवकाण्ड, नेमिचन्द्राचार्य, 704/1141/5।
42. जैन हिन्दी पूजाकाव्य परम्परा और आलोचना, पृष्ठ 381।
43. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय 9, सूत्रांक 1।
44. भगवती आराधना 38/134/16।
45. बृहद् द्रव्य संग्रह, पृष्ठांक 84, गाथांक 34।
46. राजवार्तिक, 9/5/2/593/34।
47. सर्वार्थसिद्धि 2/409, देवसेनाचार्य, पृष्ठ 7।
48. पुरुषार्थ सिद्धोपाय, अमृतचन्द्राचार्य, पृष्ठांक 87, श्लोकांक 203।
49. जैन हिन्दी पूजा काव्य परम्परा और आलोचना, पृष्ठ 49-50।
50. (क) सर्वार्थसिद्धि 7/22/363/1। (ख) जैनधर्म, रतनलाल जैन, पृष्ठ 92।
51. (क) भगवती आराधना, 206/423।
(ख) आभ्यन्तर सल्लेखना एवं बाह्य संल्लेखना।—अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, पृष्ठ 9।
52. श्री वल्लभ शताब्दी स्मारिका, पृष्ठ 178।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org